शोध मंथन, Impact Factor 5.463 (SJIF), UGC No. 40908 ISSN: (P): 0976-5255, (e) : 2454-339X,
Vol. 9, Issue 3, pp (63-71), Month: Sep. 2018

धूमिल के काव्य में सामाजिक चेतना

डॉ0 उपासना
प्रवक्ता, हिन्दी विभाग, आर्य बंधु पब्लिक स्कूल, गाजियाबाद,
उत्तर प्रदेश, भारत
Email: upasanadikshit1602@gmail.com

सारांश

धूमिल समाज के इतने सन्निकट हैं कि सामाजिक चिन्तन उनके काव्य की मुख्य धारा में शामिल हो जाता हैं। समाज विज्ञानी की तरह धूमिल बताते हैं कि किस तरह वर्तमान परिवर्तनो के आधार पर भविष्य में सामाजिक सुधार किया जा सकता है और कैसे सामाजिक जागरूकता के द्वारा रूढिवादिता और कुरीतियो को निर्मूल किया जा सकता है वास्तव में समाज मानवीय संबंधों की व्यवस्था है जिसके द्वारा मानव व्यवहार को नियन्त्रित और निर्देशित किया जाता हैं। आज सामाजिक जीवन तथा मूल्यो मे तीव्रता से परिर्वतन हो रहे है। इस स्थिति मे धूमिल की तरह व्यावहारिक द्वष्टिकोण अपना कर ही समकालीन दशाओं से सम्वन्धित यथार्थ ज्ञान को प्राप्त किया जा सकता है।

धूमिल ने पक्षपात से परे सामाजिक तथ्यो को 'ज्यो का त्यों' प्रस्तुत करके यह सिद्व कर दिया कि समाज से पृथकता काव्य की जीवंतता के लिए घातक है। काव्य वही है जो समाज का प्रत्यक्ष सहभागी बने। सामाजिक गतिविधियों पर नजर रखे। सामाजिक घटनाओं से प्रेरणा ले और मानव मात्र के सामाजिक सम्बन्धों का गहन अवलोकन करे। धूमिल के काव्य में समाजगत भावाभिव्यक्ति अपनी संपूर्ण विविधता और यथार्थ के साथ उन वास्तविकताओं का परिचय कराती है जिससे समाज में क्षेत्रवाद, भाषावाद, जातिवाद, भ्रष्टाचार, युवा तनाव, अपराध, धर्म और नैतिकता में पतन जैसी विषम समस्यायें पोषित हो रही हैं। मानवीय सम्बन्धों को विघटित करने वाला असन्तुलन ही धूमिल के काव्य का अनिवार्य विषय है।

मुख्य शब्द *— सामाजिक, आर्थिक, चिन्तन, शोषण, भ्रष्टाचार, जागरूकता, अपराध*

प्रस्तावना

धूमिल ने जिस जतन से आदमी के कई रूपों को गढ़ने का प्रयास किया उससे एक बात तो स्पष्ट है कि ''करोंड़ों मेहनतकश लोगों की तरह, 'साहित्यकार भी सामाजिक निर्माण में लगा हुआ एक साधारण आदमी है। उसे भी औरों की तरह रोटी के लिए, अपना खून पसीना एक करना पड़ता है। शोषण और सामाजिक षडयंत्रों के विरूद्ध लड़ना पड़ता है वह बादलों की दुनियों में ख्वाब बुनने वाला फरिश्ता नहीं होता। वह यथार्थ की ठोस धरातल पर खड़ा, अपने

वक्त का जागरूक प्रहरी होता है।[1] धूमिल ने आदमी के गुण–दोषों का अवलोकन करने के लिए एक घरेलू आदमी के चरित्र को जिया है। मानव स्थितियो की जटिलता उन्हें मजबूर करती है कि वे मानवीय चरित्रों को निष्पक्ष प्रस्तुति दें। धूमिल की कविता में व्यक्त आदमी स्वाभाविक गुण–दोषों से युक्त है तथा जटिलताओं और षडयन्त्रों से भरे युग में सांस लेने को लाचार। मुश्किलों के पथ में जीवन कें लिए संघर्ष करता आदमी धूमिल के काव्य रथ का सारिथी है।

(अ) सामाजिक दुर्दशा : –

धूमिल का काव्य सामाजिक उत्पीड़न की ऐसी कहानी है जिसका प्रमुख पात्र सामाजिक शोषण और अन्याय मे पिसता हुआ आदमी है । समाज के बेतुके रीतिवाजों में न चाहकर भी आस्था का प्रदर्शन करना उसकी मजबूरी है। रूढियों के बन्धन में जकडे रहना उसका स्वभाव है क्योकि समाज में रहने की विवशता होंठो को सिल देती है । इसलिए 'समाज में मूल्यों के संक्रमण की दिशा उच्च मूल्यों से हीनतर स्थितियों की ओर है।[2] यह समाज, जिसकी आंखों पर पशुता तथा अमानवीयता की पट्टी बंधी है, कानों में संवेदन हीनता की रूई ठुँसी हैं इसे किसी मजलूम की आवाज सुनाई नहीं देती। धूमिल कहते हैं–

लेकिन तुम चुप रहोगे, :
तुम चुप रहोगे और लज्जा के
उस निरर्थक गूँगेंपन –से सहोगे–''[3]

'चन्द टुच्ची सुविधाओं के लालच के समाने 'झुकता समाज विकृत हो गया है। सामाजिक विचारो पर 'जमी हुई काई और उगी हुई घास' को नोंचते हुए धूमिल 'पूरे समाज की सीवन' उधेड, कर रख देते हैं। समाज को भीड, का नाम देते हुए धूमिल कहते है –

''भीड, के खिलाफ रूकना
एक खूनी विचार है
क्योकि हर ठहरा हुआ आदमी
इस हिसंक भीड, का
अन्धा शिकार है। ''[4]

धूमिल ने सामाजिक असमानता की पीड़ा और षोशण की निरकुंष क्रीड़ा को ''कुचली हुई सापीनों''1 की भॉति नष्ट करने का बीड़ा उठाया है। धनी – निर्धन का भेद, कर्मो का विभाजन तथा जातीयता समाज का कैंसर है जो अपने संक्रमण से सामाजिक असन्तोश को भड़काने का कार्य कर रहा है। धूमिल ने भी माना है कि सामाजिक असन्तोष अपनी चरम सीमा पर है। सामाजिक असन्तोष का प्रमुख कारण तीखे सामाजिक अनुभवों के कारण उत्पन्न मानसिक अर्न्तद्वन्द्व है जिसमें फंसकर आम आदमी समाज में रहकर भी व्यर्थता का अनुभव करता है–

''वाहर आजादी से
और भीतर अनाज से लड,ता है

आगाह करो उन्हे कि यह झुकने की लज्जा नही
सिर्फ चौखट की ऊँचाई भूल जाने की
चोट है।''[5]

धूमिल की सामाजिक समझ पर राजशेखर का कथन बडा ही उपयुक्त है ''अपनी समाजिक समझ में धूमिल, समकालीन हिन्दी कविता का 'हिमालयन ब्लण्ड़र हैं। अपनी वर्गीय समझ के मातहत वह कविताओं के द्वारा सीधे जीवन में हस्तक्षेप करता है। यानी कविताओं द्वारा व्यक्ति के भीतर वैचारिक संक्रमण करता है। यह उनके कवि की ताकत है।''[6] सदियों से पददलित होती मानवता धूमिल की कविताओं में सिर उठाये खडी है। नये सिरे से अपने पुर्नगठन के लिए व्यग्र है। धूमिल का हदय मानव की वेदना से व्यथित हो कुछ करने की इच्छा से भर उठता है । उनकी एक चिंता यह भी है कि समाज प्रत्येक आंतरिक पहलू का विवेचन कैसे किया जाए। धीरे–धीरे धूमिल सामाजिक अन्याय के विरूद्ध तेज विरोध का प्रारम्भ तथा समाज को निज दासता में बॉधने वालो के विरूद्व आलोचना का स्वर मुखर करते है। धूमिल के काव्य में सामाजिक दुर्दशा पर चिंतन का भाव वैशम्य, विद्रूपता, दरिद्वता, करूणा और विद्रोह की सम्मिलित भूमिका में चलता रहता है ।

(ब) आर्थिक संकट : –

धूमिल की कविताओं में आर्थिक संघर्षो के हाशिए काफी चौड़े हैं परिणामतः आर्थिक विषमता की मार झेलते सामान्य जनों की दैन्य स्थितियॉ कलात्मक अभिव्यक्ति के सहारे उभरने लगती हैं। आर्थिक असन्तुलन का प्रकोप समाज और व्यक्ति की वास्तविक पहचान छीन लेता है। समाज छद्म नीतियों की चादर ओढ़ लेता है और व्यक्ति अमानवीयता का नकाब। धूमिल ने आर्थिक असंतुलन को आतंक की पहल माना है –

''जादुई आंतक के साथ
जहॉ व्याकरण भाषा की सारी सम्भावनाऍ खो चुकी है
और अर्थशास्त्र एक पौसरे में
बदल गया हैं। ''[7]

इस भौतिकवादी युग में अर्थवाद की विभीषिका में जकडा मानव मन मनुष्यता की समस्त सीमाऍ लांघ गया है। चारो ओर व्यक्तिगत स्वार्थ का नग्न नष्त्य हो रहा है। आर्थिक असतुलन से उपजा यह भयानक दृश्य सरकार की गलत नीतियो का परिणाम है। रविनाथसिंह के शब्दो में– ''स्वतंत्र भारत में मुख्यतः योजनाऍ पश्चिमी देशों के अनुकरण पर बनी, 'उनमें देश की प्रगति का ध्यान नहीं रखा गया। परिणामतः विदेशी और देशी सोतों से प्राप्त अरबों रूपयों का सही उपयोग नही हो सका और आम आदमी के जीवन स्तर में कोई संतोष जनक सुधार नहीं हो पाया। प्राप्त आय का विवरण इस प्रकार हुआ कि अमीरों की अमीरी तो बढ़ी, लेकिन गरीब और गरीब होते रहे।''[8] आर्थिक भेदभाव ने समाज को वर्गो में विभाजित कर दिया । उच्च, मध्यम और निम्न

वर्ग का अन्तर निरंतर गहराता ही चला गया। –

''कहीं ऐसा न हो कि पत्तों की जुबान में
जहर भर जाए
और पेंड़ों में फूल दुबारा न आए।''[9]

आर्थिक संकट को लेकर धूमिल की वैचारिक बैचेनी अनेक स्तरों पर उभरकर सामने आती है। यह बैचेनी मात्र भावात्मक आवेश नहीं है वल्कि अधूरी अर्थ व्यवस्था पर पुनः विचार करने का निश्चय है। आर्थिक असन्तुलन का सीधा प्रभाव आम आदमी की रोजी रोटी पर पड़ता है। रोटी की गठजोड के माध्यम से धूमिल ने भारतीय अर्थव्यवस्था के यथार्थ को मर्मस्पर्शी अभिव्यक्ति दी है –

एक छोटा सा जोड़–भाग
. . . . . .
बड़कू को एक
छोटकू को आधा
परबत्ती–बालकिशुन आधे में आधा
कुल रोटी छै
. . . . . .
खाने से पहले मुँह दुब्बर
पेटभर
पानी पीता है और लजाता है
कुल रोटी तीन
पहले उसे थाली खाती है
फिर वह रोटी खाता है।''[10]

सामाजिक व्यवस्था में आर्थिक वैषम्य नहीं होता तो मुँह दुब्बर को रोटियॉ गिनकर खाने की जरूरत नहीं होती। धूमिल का उददेश्य आर्थिक विषमता से होने वाली हानियों को गिनना नहीं है बल्कि जनता का उनसे परिचित कराना है। पूँजीवादी सभ्यता से जनता के विश्वास को जो आघात पहुँचता है उस सभ्यता को विद्रोह की आग में झोंकने की लालसा धूमिल को बागी अवश्य बनाती है किन्तु आम आदमी के अभावों से इतना जोड़ देती है कि उनके आसुंओ की धारा धूमिल का चेहरा भिगो देती है ।

(स) साम्प्रदायिकता तथा प्रादेशिकता :–

साम्प्रदायिकता सर्वप्रमुख चुनावी हथकण्डा है। चुनावों को सफल बनाने के लिए साम्प्रदायिक संघर्ष को खुले आम छूट दी जाती है। भारत में प्रभुत्व की स्थापना के लिए

साम्प्रदायिकता का हथियार की तरह इस्तेमाल तथा साम्प्रदायिक तत्वों की सक्रियता अन्य देषों के मुकाबले कुछ ज्यादा ही है। इसीलिए विदेशी आक्रमणकारियों ने भारत को खण्ड़ित करने के लिए साम्प्रदायिकता का सहारा लिया। अशान्ति का पर्याय बनी साम्प्रदायिकता अगर कहीं बौनी पड़ती है तो वह है बौद्विक चेतना। फिर धूमिल सरीखे कवि का कहना ही क्या! धूमिल का वैचारिक पैनापन साम्प्रदायिकता की राजनीतिक परिभाषा समझने की कोशिश करता है कि कैसे अंहिसा की तीखी तलवार सत्तारूढ़ शक्ति का गला काटती है।

''मैंने अंहिसा को
एक सत्तारूढ़ शब्द का गला काटते हुए देखा
.....
मैं यह सब देख ही रहा था कि एक नया रेला आया
उन्मत्त लोगों का बर्बर जुलूस। वे किसी आदमी
को हाथों पर गठरी की तरह उछाल रहे थे
उसे एक–दूसरे से छीन रहे थे। उसे घसीट रहे थे।''?[11]

साम्प्रदायिकता एक पागलपन है, उन्मत लोगों का बर्बर जुलूस है। साम्प्रदायिकता की तरह प्रान्तीयता का दर्द भी असहनीय है। समाज का जागरूक वर्ग प्रान्तगत पहचान नहीं चाहता। उसे मालूम है कि प्रान्तों का पृथक्करण व्यक्ति को सामाजिकता से दूर नहीं ले जा सकता। लेकिन चंद राजनीतिज्ञ अपने स्वार्थ के कारण साम्प्रदायिकता तथा प्रादेशिक द्वेष भड़काकर अपना उल्लू सीधा कर रहे है। प्रांतों के आधार पर लोगों में फूट डालकर राज करना चाहते हैं। प्रान्तीयता का मुखौटा लगाये यह घुसपैठिये हैं जिनकी पहचान हमें स्वॅय करनी है–

''वह देखो
.....
प्रान्तीयता का चेहरा लगाये हुए
कोई घुसपैठिया है?''[12]

समकालीन परिवेश पर धूमिल की पकड़ बड़ी मजबूत है। ऐसा कोई क्षेत्र नहीं जिसे धूमिल ने स्पर्श न किया हो। छोटी से छोटी कमियों को पकड़ने में उनकी अपूर्व क्षमता तथा समझ की व्यापकता के परिणामस्वरूप राजनीति के घिनौने चरित्र की एक–एक पर्त खुलती चली जाती है, वो भी आम आदमी की समझ के दायरे में। यह धूमिल के काव्य की सबसे बड़ी सफलता है।

(द) शिक्षा की दुर्दशा : –

धूमिल ने समाज की बुनियादी जरूरतों को काव्य की आवश्यकता माना है। जहॉ तक शिक्षा की बात है तो शिक्षा हर व्यक्ति के लिए आवश्यक है। सामाजिक और व्यक्तिगत जीवन में शिक्षा की बड़ी महत्ता है। शिक्षा से ही मानव के चरित्र का निर्माण होता है। व्यवसायीकरण की ऑधी ने शिक्षा जगत की पवित्रता का गर्द के गुबारों से ढ़क दिया है।, नये नियम बन रहे

हैं लेकिन शिक्षा स्तर उठने का नाम नही ले रहा है। शिक्षा सूत्र विद्वानो के हाथों मे न होकर राजनीतिज्ञों के हाथों की षोभा बढ़ा रहे हैं। क, ख, ग, के सही उच्चारण में असमर्थ लोग देश की सत्ता पर काबिज हैं और भारी भरकम डिग्रियों के बोझ तले दबे शिक्षित चपरासियों की नौकरी के लिए लालायित है।

''शैक्षिणिक क्षेत्र में असंतुलन का कारण और भी हैं – स्थानीय और तात्कालिक राजनीति के आधार पर क्षेत्र विशेष के लोगों को खुश करने की नीति अपनायी जाती है और आवश्यकता पर बिना विचार किए ही स्कूल, कालेज अथवा विश्वविद्यालय खुल जाते हैं। यह समाधान का तरीका उन प्रभावशाली नेताओं कें चुनाव में भले सहायक हो किन्तु उसके दूरगामी परिणाम बड़े अनर्थकारी सिद्व हो रहें है। इसकी वजह से किसी क्षेत्र विशेष में डिग्रीधारी शिक्षितों की संख्या तो बढ़ जाती है किन्तु उनकी उपयोगिता के दूसरे दरवाजे बंद रहते हैं।''[13] शिक्षा में बढ़ती अनियमितता और अराजकता के फलस्वरूप विद्वता की कहीं पूछ नहीं हैं। धूमिल लिखते हैं –

''सबसे अच्छे मस्तिष्क
आराम कुर्सी पर
चित्त पड़े हैं।''?[14]

शिक्षा की अस्वस्थ परम्परा का सीधा असर युवावर्ग पर पड़ता है। शिक्षित होने पर भी पर्याप्त अवसरों का अभाव नौजवानों कों बेकारी की ओर धकेल देता है। उनकी डिग्रियों रोजगार दफ्तरों की भेंट चढ़ जाती हैं। धूमिल के अनुसार –

''नौजवान अपनी जिम्मेदारियां
रोजगार –दफ्तरों को सौंपकर
चूहों की नस्ल पर बहस करते है।''[15]

शिक्षा मे बढ़ता असन्तुलन राष्ट्रहित के समक्ष एक बड़ी चुनौती है। ''पिछले चालीस वर्षो से हमारे शिक्षा शास्त्री, मंत्री व प्रधानमंत्री तक कहते आ रहे हैं, शिक्षा पद्धति और इनकी व्यवस्था गलत है, इसे बदलना चाहिये। इस बीच मंत्री, प्रधानमंत्री बदले हैं लेकिन शिक्षा पद्वति नहीं बदली।''?[16] शिक्षा ऐसी हो जो व्यक्तित्व का विकास भी करे और जीविको पार्जन में सहायता भी करे तो शिक्षा का उददेश्य स्वतः सफल हो जायेगा ।

(य) धूमिल काव्य में व्यक्त आम आदमी का स्वरूप : –

आम आदमी की पहचान को 'एक जोड़ी जूते' से जोड़ने वाले धूमिल परिस्थितियो से झगड़ते–जूझते आदमी को मुकम्मल रूप में प्रस्तुत करते हैं। आदमी का हष्दय बेध कर निकला दर्द उनके काव्य की षिराओं को स्पन्दित करता है। ऐसा आदमी जो संघर्श, तनाव, उत्पीड़न भूख, शोषण कुंठा तथा अपराध के रेशे–रेशे में बिधा हुआ है, जिसकी आत्मा रिक्त है, इंसानियत मर चुकी है जो पशु बनकर समाज में जीने के लिए लाचार है, धूमिल को लिखने के लिए बाघ्य करता है परिणाम स्वरूप धूमिल का काव्य 'किसी बौखलाये हुय आदमी का संक्षिप्त एकालाप'[16] बन

जाता है। उसकी पूरी जिंदगी जरूरतों की सीमा तक सिमट आयी है। उसकी सीमित जिन्दगी को परिभाषित करने में धूमिल सीमित शब्दों का ही प्रयोग करते है –

''कोई आदमी जूते की नाप से
बाहर नही है।''[17]

अर्थात उच्चवर्ग की गिरफ्त में आम आदमी के वर्तमान और भविष्य का लेखा –जोखा पूंजीवादी जूते की नोंक पर तय होता है। धूमिल ने आदमी की पहचान कई स्तरों पर की है। वे विभिन्न स्थितियों में जीने वालें ''आदमी की अलग–अलग 'नवैयत'बतलाते है।''[18] जिसमें कुछ चेहरों की असलियत मानवीय पहचान खो चुकी है। धूमिल को लगता है कि आज आदमी को आदमी होने का क्षोभ है फिर भी धूमिल मनुष्यत्व में अनास्था कें लिए आदमी को धिक्कारते है–

''कैसे आदमी हो
अपनी जाति पर थूकते हो।''[19]

धूमिल ने 'मोचीराम 'में आदमी की सम्पूर्ण जिन्दगी को उतारा है जो' असलियत और अनुभव के बीच सच्चाई है। धूमिल की कविताओं में दूसरा आदमी वह है जो वक्त की मार झेलता हुआ जिन्दगी को अनमने ढ़ग से ढ़ोये जा रहा है। उसे वक्त के गुजरने का इंतजार नहीं बल्कि गुजरने की जल्दी में वह वक्त को पीछे छोड़ देना चाहता है। धूमिल कहते हैं–

''अपनी उपस्थिति पर अनायास
खॉसता हुआ
मेरे पास रोज एक आदमी आता है
वक्त के साथ बैचेनी से बीतता हुआ।''[20]

एक आदमी वह भी है जो –

''आदमी के भेस में
शातिर दरिन्दा है,
जो हाथों और पैरों से पंगु हो चुका है
मगर नाखून में जिन्दा है।''[21]

बेबसी, लाचारी, उदासीनता से सामना करने वाला आदमी अचानक क्रांति की बात करने लगता है। क्रांति की आक्रामकता में आदमी की विस्फोटक छवि का वर्णन देखते ही बनता है–

''तुम्हारी ऑखो में हिंसक आग जलती है
दांतों के खिलाफ चलते हैं दांत
निचला जबड़ा ऊपरी जबड़ों को पीसता है
रोशनी थर्राती है– विस्फोंटक कौंध ''[22]

धूमिल ने आदमी की जुझारू प्रवृत्ति पर भी प्रकाश ड़ाला है–

''भूख रह कर भी आदमी
अपने हिस्से का आकाश
मुस्कराते हुए ढोता है।''[23]

आदमी का भाग्यवादी भरोसा धूमिल को कचोटता है–

''आदमी
कुछ नही करता
जो कुछ करता है समय–
करता है।''[24]

धूमिल ने जिस जतन से आदमी के कई रूपों को गढ़ने का प्रयास किया उससे एक बात तो स्पष्ट है कि ''करोंड़ों मेहनतकश लोगों की तरह, 'साहित्यकार भी सामाजिक निर्माण में लगा हुआ एक साधारण आदमी है। उसे भी औरों की तरह रोटी के लिए, अपना खून पसीना एक करना पड़ता है। शोषण और सामाजिक षडयंत्रों के विरूद्ध लड़ना पड़ता है वह बादलों की दुनियों में ख्वाब बुनने वाला फरिश्ता नहीं होता। वह यथार्थ की ठोस धरातल पर खड़ा, अपने वक्त का जागरूक प्रहरी होता है।[25] धूमिल की कविता में व्यक्त आदमी स्वाभाविक गुण–दोषों से युक्त है तथा जटिलताओं और षडयन्त्रों से भरे यूग में सांस लेने को लाचार। मुश्किलों के पथ में जीवन कें लिए संघर्ष करता आदमी धूमिल के काव्य रथ का सारिथी है।

निष्कर्ष –

सृजन सन्दर्मों के अन्तर्गत धूमिल की रचना धर्मिता ने अपनी संवेदनशीलता और अनुभूति को समकालीन सन्दर्भो को बखूवी उजागर किया। संवेदनशीलता के विरोध आयाम इस बात के साक्षी हैं कि धूमिल ने अपने युग की धडकन को सुना, समझा और उसे सार्वजनिक किया। यहीं नहीं उन्होनें समकालीन परिवेश के विविध पहलुओं को अपनी संवेदनाओं के सहारे मुखर वाणी प्रदान की । उनकी कविताओं में परिवर्तित मानवीय सम्बन्धों के बदलते सन्दर्भों का खुलासा हुआ है धूमिल की सामाजिक चेतना परिवेश की पीड़ा संवेदना तथा छुए–अनछुए पहलुओं को समान रूप से छूती है। एक ओर सामाजिक समस्यायों के पहाड़ है तो दूसरी ओर समाधान रूपी सरिता। इस विरोधाभास के बीच धूमिल ने संघर्ष की अनिवार्यता को स्वीकार किया।

संदर्भ

1. राजशेखर –कल सुनना मुझे : भूमिका पृ० : **5**
2. भवानी प्रसाद मिश्र–समकालीन काव्य की दिशाएँ पृ० : **53**
3. धूमिल–संसद से सड़क तक : जनतंत्र के सूर्योदय में पृ० : **13**
4. धूमिल–संसद से सड़क तक : पटकथा पृ० : **122**
5. धूमिल–सुदामा पांडे का प्रजातंत्रः निहत्थे आदमी से कहा पृ० : **87**

6. राजशेखर–कल सुनना मुझे : भूमिका पृ० : **25**
7. धूमिल–सुदामा पांडे का प्रजातंत्र : शिविर नम्बर तीन पृ० : **65**
8. रविनाथ सिंह–नयी कविता की भाषा पृ० : **36**
9. धूमिल–सुदामा पांडे का प्रजातंत्र, जनतंत्र एक हत्या संदर्भ पृ०: **70**
10. धूमिल–कल सुनना मुझेः किस्सा जनतंत्र पृ० : **17**
11. धूमिल–संसद से सड़क तक : पटकथा पृ० : **120**
12. धूमिल–संसद से सड़क तक : भाषा की रात पृ० : **94**
13. रविनाथ सिंह–नयी कविता की भाषा पृ० : **38**
14. धूमिल–कल सुनना मुझेः एक कविताः कुछ सूचनाएँ पृ० : **30**
15. धूमिल–संसद से सड़क तक : मकान पृ० : **51**
16. सार्थक–(पत्रिका) पृ० : **40**
17. धूमिल–संसद से सड़क तक : मोचीराम पृ० : **37**
18. धूमिल–संसद से सड़क तक : मोचीराम पृ० : **38**
19. धूमिल–संसद से सड़क तक : मोचीराम पृ० : **38**
20. धूमिल–संसद से सड़क तक : एक आदमी पृ० : **53**
21. धूमिल–संसद से सड़क तक : मुनासिब काररवाही पृ० : **86**
22. धूमिल–सुदामा पांडे का प्रजातंत्रः हत्यारे (दो) पृ० : **97**
23. धूमिल–संसद से सड़क तक : भाषा की रात पृ० : **97**
24. धूमिल–कल सुनना मुझे : गांव में कीर्तन पृ० : **75**
25. राजशेखर–कल सुनना मुझे : भूमिका पृ० : **5**